International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 19-06-2022, Accepted: 05-07-2022, Published: 21-07-2022
Volume 8, Issue 4, 2022, Page No. 38-40

हिन्दी साहित्य में कबीर दर्शन के मायने

शिवहरी
शोधार्थी, राजनीतिक अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, दिल्ली, भारत

सारांश
कबीर मुख्य रूप से आलोचनात्मक चेतना, प्रश्न करने की प्रवृत्ति और अनुभव आधारित सत्य का वक्ता होने के साथ धार्मिक विभेद, बाह्याचारों और वेदपुराण की सत्ता को चुनौती देते हैं। उनका रहस्यवाद सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से पीड़ित जनता को यह यथार्थ बता रहा था कि मनुष्य का असली धर्म इस मायालोक से मुक्त होने में है।
किसी धर्म–मत–सम्प्रदाय और ढाँचे में न बंधने वाले कबीर को यदि हम हिन्दी साहित्य, सगुण, कवि और संत जैसी सीमाओं में पिरो दे और कबीरपंथियों के प्रमाणीकरण का इंतजार करें तो कबीर सिर्फ वह कबीर होगा जिस पर धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक हथकंडे, बहस व विवाद किए जा चुके हैं।
हिन्दी साहित्य में अपने कबीर पर हुए शुरुआती लेखन की बहस व विवादों से कई मुद्दे जैसे अकादमिक बहस, धार्मिक–जातीय बहस के साथ–साथ कबीर दर्शन को भी संक्षिप्त में समझने की है जिसमें हमारा अनुमान है कि सम्पूर्ण सत्तामीमांसा के दार्शनिक कबीर को हिन्दी साहित्य के एकल सत्तामीमांसा प्रारूप में समझना कबीर की अपूर्ण समझ होगी।

मूल शब्दः हिन्दी साहित्य, कबीर, धर्म, भाषा–विवाद, जातीय परिप्रेक्ष्य, दर्शन

प्रस्तावना
सन् 14–15वीं सदी में जन्मे अनपढ़ कबीर, हिन्दू–मुस्लिम धर्म की विवादित हिस्सेदारी थे। उन्होंने स्वयं को जुलाहा कहा। कबीर के मुख से निकले वाक्यों को बाद में 'बीजक' नामक ग्रन्थ में समाहित किया गया। उनकी अन्य रचनाऐं साखी, सबद, रमैनी है। जिनके आधार पर उनकी काव्यशैली को मुख्यतः 'उलटबांसी', सधुक्कड़ी अथवा पंचमेल भाषा के रूप में पहचाना गया। यह बात भी पूर्णतः सत्य है कि कबीर को दुनिया से परिचित कराने का श्रेय हिन्दी साहित्य को जाता है।
कबीर के दोहे, भाषा और काव्य शैली के अनूठे होने के बावजूद भी हिन्दी साहित्य ने उन्हें भक्ति साहित्यध्भक्ति काल का कवि व सन्त कवि के रूप में स्थान प्रदान किया है। कबीर को हिन्दी साहित्य में स्थापित कराने का प्रमुख श्रेय क्षितिमोहन सेन, अयोध्या सिह 'हरिऔध', हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि बहुत से साहित्यकारों को है, जिन्होंने कबीर पर शुरुआती लेखन तैयार व संकलित किया। हालांकि बाद में इसे नामवर सिंह, पुरुषोत्तम अग्रवाल व धर्मवीर आदि ने व्यक्तिगत कार्य करके संजोया है। इस लेखन का मुख्य उद्देश्य हिन्दी साहित्य में कबीर के दर्शन की महत्ता व सीमितता का विश्लेषण प्रस्तुत करना है।
वस्तुतः कबीर अध्ययन का दायरा इतना विशाल है कि कबीर पर विभिन्न विषयों व क्षेत्रों में अकादमिक कार्य हुआ है। जिसमें हम कबीर तथा कबीर के विचारों का पुनरुद्भव देख सकते हैं। जहाँ एक तरफ हिन्दी साहित्य, इतिहास, दर्शन, राजनीति से लेकर धर्मशास्त्र में भी कबीर की साहित्यिक व्याख्या की गई है, वहीं दूसरी तरफ, अकादमिक व साहित्यिक विश्लेषण के आधार पर कबीर को संत, भक्ति कवि, कवि, राजनैतिक कवि, तथा दलित चिंतक कबीर जैसी श्रेणियों में वर्गीकृत कर दिया है। साथ ही कबीर की भाषा शैली 'उलटबांसी' पर प्रश्न उठाए, उन्हें अक्खड़ कहा गया तथा कबीर को समाज सुधारक, समन्वयवादी, सामाजिक पाखंड विरोधी आदि सीमाओं में पिरोया गया।
हम जानते हैं कि कबीर का जीवन, गृहस्थ परम्परा में वह व्यक्तित्व है जो योगी साधुओं की तरह जीवन जीता है, और अपने दैनिक कार्यों को करते हुए आम स्थानीय भाषा का प्रयोग करता है। जिसमें उनका संदेश ईश्वर तथा कर्म के सामंजस्य के रूप में दिखता है। उनकी साधना में हमें प्रेमाभक्ति, सहज साधना, रहस्य दर्शन, सात्विक जीवन, आचारगत सुधारवाद, पाखंड–विखंडन, मानवमात्र की एकता, लोकतत्त्व, श्रम की प्रतिष्ठा तथा मृत्युबोध का संदेश जगजाहिर है। लेकिन हिन्दी साहित्य ने एक तरफ जहाँ कबीर को सन्त कवि, कवि के रूप में सीमित रखा, वहीं सामाजिक विज्ञान के अन्य विभागों ने कबीर को ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक व समकालीन संदर्भ में समझने का नजरिया व विकल्प प्रदान किया।
हिन्दी साहित्य ने जनमानस में जिस कबीर की स्थापना की है क्या वह कबीर की आम या संपूर्ण समझ हेतु एक पर्याप्त पटल है? क्या यह स्थापना 15वीं सदी के कबीर और 21वीं सदी के कबीर के बीच समानता दिखाती है? अगर नहीं तो, आज के कबीर का अध्ययन या समझ बहुत चुनौतीपूर्ण प्रतीत होती है। क्योंकि कबीर की भाषाशैली, दर्शन तथा कबीर पंथ की व्याख्या ने अलग–अलग तरह का गतिशील आधार दिया है। क्या कहीं ऐसा तो नहीं कि कबीर की वर्तमान स्थापना में साहित्यकारों ने पक्षपाती रवैया अपनाया हो, जैसा कि पुरुषोत्तम अग्रवाल का मानना है कि "ब्राह्मण वर्चस्व तथा औपनिवेशिक सत्ता की 'सांठगांठ के फलस्वरूप कबीर की पहचान को 18–19वीं सदी में रचा गया और कबीर के ऐतिहासिक परिवेश के बारे में 'सहज सत्य' मान लिए गए कुछ असत्यों से मुक्ति आवश्यक है।"

हिन्दी साहित्य में कबीर दर्शन के मायने में हमें हिन्दी साहित्य में कबीर को उनके दर्शन के आधार पर खुला स्थान देना होगा, जिससे जनमानस के दार्शनिक को जनमानस को सौंपा जा सके। इसलिए कबीर को समझने के लिए समकालीन संदर्भ व नजरियों को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं –

हिन्दी साहित्य में कबीर दर्शन का स्थान

कबीरदास, हिन्दी के महत्त्वपूर्ण दार्शनिक कवि हैं और यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि कबीर हिन्दी के पहले कवि थे, जिनका समाज दर्शन तथ्यपरक, तर्कपरक और अधिक सघन था। वर्णवादी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए उन्होंने प्रतिरोध की जिस शब्दावली का निर्माण किया, वह नितान्त नयी व खरी थी। यद्यपि कबीर के साथ नामदेव, गुरुनानक, संत रविदास आदि ने भी जातिव्यवस्था और विषमतामूलक सामाजिक संरचना पर कड़ा प्रहार किया, किन्तु कबीर जैसी धार, इन संतों में नहीं दिखाई देती।

कबीर की कविताई का मर्म इतना गहरा और व्यापक था कि जमाने को विदित है कि कबीर सिर्फ साहित्य की धरोहर नहीं हैं और यह बात बहुत स्पष्ट है कि 'साहित्यकारों और संस्कृति के व्याख्याकारों ने कबीर को वैसी मान्यता कभी नहीं दी, जैसी कि सूरदास, तुलसीदास व केशव बिहारी आदि को दी। जब साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार पाए रविन्द्रनाथ ठाकुर ने कबीर को अपना प्रेरणास्रोत बताया, तब विद्वानों को लगा कि कोई चूक हो रही है और तभी से कबीर को कवि बनाने की कवायद शुरु हुई।'

वैसे वर्षों से साहित्यकारों में विवाद इस बात पर है कि कबीर को ज्ञानी माना जाए या भक्ति कवि। इसी विवाद को हम कबीर की काव्यभाषा के सौन्दर्य के मूल्यांकन में समझ सकते हैं, जिसमें हम जानते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ही कबीर की मान्यता का सूत्रपात्र साधक, सुधारक व उपदेशक के रूप में किया था। लेकिन उनके कवित्व को मान्यता देने में उन्हें संकोच था। जैसा कि नामवर सिंह का अनुमान है कि कबीर के प्रति सम्मान के बाद भी श्यामसुन्दर दास और रामचन्द्र शुक्ल उन्हें साहित्य में स्थापित नहीं करा पाए। क्योंकि शुक्ल जी की दृष्टि में कबीर वाणी असाहित्यिक व ऊटपटांग है तथा द्विवदी जी के अनुसार कबीर वाणी के तानाशाह हैं।

कबीर काव्य सौन्दर्य के क्रम में आचार्य द्विवेदी, हिन्दी के साहित्यिक इतिहास में आदिकाल को मध्यकाल तक ले जाने वाले, खोए हुए संवेदना सूत्रों की तलाश में सिद्धों और नाथों से होते हुए कबीर तक गए। उन्होंने कबीर की कविता को उनकी धर्मसाधना का 'बाइप्रोडेक्ट' कहा तथा मूल्यांकन के अगले क्रम में पुरुषोत्तम अग्रवाल का आग्रह है कि कबीर की कविता में भावोन्मेष और व्यंजना के पीछे की सहज मानवीय दृष्टि को पहचानने का है। अग्रवाल मानते हैं कि कबीर के प्रत्येक मूल्यांकन में उन्हें किसी न किसी एजेंडे के तहत गढ़ा गया है। वे आचार्य द्विवेदी से भी असहमत हैं, क्योंकि उनका एजेंडा कबीर को नाथ सम्प्रदाय से जोड़ना है, जबकि वे कबीर को विशुद्ध कवि मानना चाहते हैं।

जो स्थिति कबीर के जीवन की होगी, वही उनके साहित्य की है। उन्होंने लोगों के सामने वाणी कही, लेकिन अनपढ़ होने के कारण लेखन व सम्पादन न कर सके। जो कि बाद में अलग–अलग क्षेत्रों के लोगों–विद्वानों ने किया। इसी तौर पर कबीर वाणी के तीन पाठ मिलते हैं – राजस्थानी, पंजाबी और पूर्वी पाठ, जिनके आधार पर आधुनिक विद्वानों ने कबीर वाणी के प्रमाणिक पाठ को प्रस्तुत करने की कोशिश की। लेकिन इनमें से कोई भी पाठ कबीर की मूल भाषा का प्रतिनिधित्व नहीं करता।

अकादमिक बहस से जनमानस तक

हम यह मान सकते हैं कि कबीर जनमानस के दार्शनिक हैं, लेकिन अकादमिक बहसों, कबीरपंथियों की व्याख्या व क्षेत्रीय पहचान ने जनमानस में एक अधूरी छवि स्थापित की है। क्योंकि कबीर के विस्तृत साहित्य में परस्पर विरोधी तत्त्वों को ढूंढा जा सकता है, जिससे व्याख्याकार अपने पूर्वाग्रह के अनुसार कबीर पर आरोपित धारणा बना सकता है। उदाहरणार्थ – अगर कवि उस वैष्णव भक्ति के प्रखर साधक है और रामानन्दी अकथ प्रेम के उन्नायक है तो लोग पीढ़ी दर पीढ़ी कबीर के जो तीखे सपाट पद सुनते आ रहे हैं, उनका क्या होगा?

पाथर पूजे हरि मिले, तो मं पूजूं पहार
घर की चकिया कोऊ न पूजै, पीसि खाय संसार।
पाथर का ही देवरा पाथर की का देव
पूजनहारा आंधरा क्या करि माने सेव।।
हिन्दू कहो तो हूं नहीं, मुसलमान भी नाहि
पांचतत्त का पूतला गैवी खेले मांहिं।
वैष्णव हुआ तो क्या हुआ माला फेरि चारि
बाहर कांचनवा रहा भीतरि मरी मंगारि।।
सेवे सालिग राम कूं, मन की भ्रान्ति न जाइ
सीतलता सुपिने नही, दिन–दिन अधकी लाई।

इस उदाहरण से तो कबीर पर निर्मित वैष्णवता पूरी तरह से हवा हो जाती है। धार्मिकता पर जो कबीर का जबरदस्त प्रहार है उससे वह सीधा साधू भी दिखाई देता है।

कबीर की गूढ़ता, विचारों को समझने के लिए उनकी भाषा, भाषा का संदर्भ काल तथा उद्देश्य को समझना बहुत जरूरी है। यह तो हम भली भांति समझ ही चुके हैं कि जहाँ–जहाँ भी कबीर को अपनाया गया है, उसमें एकरूपता नहीं है। बल्कि कबीर को भाषागत क्षेत्रीयता के तौर पर सुशोभित किया गया है। जहाँ कबीर को भाषा के तौर पर निम्नतर व अनुपयोगी करार दिया गया है जबकि राहुल सांस्कृत्यायन का मानना है कि आठवीं सदी के विचारक 'सरह' की भाषा शैली कबीर द्वारा प्रयुक्त उलटबांसी का ही समान रूप है।

इस क्रम में लिंडा हेस कहती है कि कबीर की शिक्षाऐं तथा असंभव मौखिक व्यवहार हमें बौद्धिक परिस्थितियों में प्रवेश कराते हैं। हालांकि कबीर की प्रचलित शैली को बेढंगा, अनुचित तथा कठोर अर्थ के रूप में माना गया है। लेकिन यह शैली भारतीय परम्परा का हिस्सा रही है और इसे समझने के लिए लगाव तथा सांदर्भिक जानकारी बहुत जरूरी है।
कबीर की छवि से ही स्पष्ट है कि कबीर एक लौकिक जीवन की सार्थकता को प्राणपत्र से प्रतिष्ठित करने वाला सजग, सचेतन, विद्रोही चिन्तक है जो हिन्दू–मुस्लिम मायावी भ्रान्तियों का उच्छेदन पूरे दर्शनिक प्रवीणता के साथ कर रहा है।

कबीर दर्शन का सीमित अवलोकन

हिन्दी साहित्य में कबीर को भक्ति कवि व हिन्दू–मुस्लिम समन्वयक के तौर पर अधिक स्थापित किया गया है। कबीर की कविता केवल अनुभव से उत्पन्न नहीं हुई। बल्कि इसमें आधारभूत दार्शनिक विचार है। कबीर की कविता पढ़ते समय सदैव ही हमारा ध्यान उनके दर्शन पर चला जाता है। वे दर्शन से जीवन का अनुभव करते हैं। लेकिन एक दार्शनिक के रूप में जिन बिम्बों और प्रतीकों का उन्होंने उपयोग किया है। वे उनकी कविता को सरल नहीं रहने देते। अतः कबीर की कविता का अध्ययन बहुत सावधानीपूर्वक करना चाहिए।
लगभग छः सौ सालों में लोग गाँवों, अन्य स्थान पर कबीर को गाते रहे हैं तथा उनके राग में अपना राग मिलाकर भी जोड़ते रहते हैं। उनकी स्मृति लोकगायक की रही, जैसे कि आजतक लोकगायक कथापुराण, नीतिधरम पर कविताई करते फिरते हैं।
कबीर के दोहे व उलटबासियों में एक अलग स्तर की आध्यात्मिकता तथा दर्शन का उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ –

सुमिरण की सुधि यूँ करो, जो गागर पनिहारी
बोलत डोरत सूरति में, कहे कबीर विचारी।

कबीर की भाषा में आध्यात्मिक स्थल होने के साथ जमीनी जुड़ाव व साधारण जीवन स्पष्ट नजर आता है। क्योंकि कबीर गृहस्थ जीवन में योगियों की तरह जीवन जीकर अध्यात्म व कर्म को महत्त्व देते हुए सामाजिक दर्शन को प्रस्तुत कर रहे हैं। हमें समझना चाहिए कि कबीर एकल सत्तामीमांसा को चुनौती देते हैं तथा संपूर्ण सत्तामीमांसा के समर्थक प्रतीत होते हैं।

कबीर पर धार्मिक–जाति परिप्रेक्ष्य

हिन्दी साहित्य में विद्वानों ने शुरुआती लेखन में एकतरफ रूप से कबीर को स्थापित किया है, जबकि हिन्दू, मुस्लिम, दलित विचारकों के साथ–साथ उनके धार्मिक व जातीय समीकरण के उठते सवालों को नजरअंदाज किया।
कबीर का युग सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक उथल–पुथल की अपेक्षा धार्मिक उथल–पुथल की दृष्टि से बहुत अधिक ही ग्रस्त था। कबीर के युग तक सिद्धपंथ, नाथपंथ, जैन साधना, सूफी साधना भारतीय समाज के कुछ सीमित क्षेत्रों में अपने लिए स्थान बना चुकी थी। ये सभी सम्प्रदाय परम्परागत रूप से हिन्दू धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं के विरोध में उठे थे।
कबीर ही नहीं उनके जैसे दस्तकार और निचली जाति से आए ज्ञानमार्गी संत नामदेव, सेव, रैदास, सावंता, दादू, चोखा–मेला, ये सभी चेतनागत विद्रोह के कारण जात पात, ऊंच–नीच के भेदभाव को छोड़कर उस निराकार परमेश्वर के साधक बने, जो सारी मानव जाति की समता और शान्ति का प्रतीक था। खतरा यह है कि कबीर और अन्य ज्ञानमार्गियों को रामानन्दी साधुओं की तरह भक्त बताकर उनके सांस्कृतिक अन्तर्विरोध के पैनेपन को थोथा कर दिया जाएगा।
जातिगत विवरण के अन्तर्गत हमें समझ आता है कि हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल तथा श्यामसुन्दर दास उन्हें ब्राह्मणवादी भक्ति सगुण काव्य में समेटने की कोशिश करते दिखते हैं। वहीं डॉ. धर्मवीर, कबीर को ऐतिहासिक रूप से दलित चिंतक बताते हैं जिनका अनुसरण डॉ. अम्बेडकर करते थे। कबीर के काव्य में धार्मिक रूढ़िवाद और उनके विभिन्न आयामों का निदर्शक व्यापक रूप से मिलता है। कबीर साहित्य की लोकप्रियता का एक कारण लोकधर्म भी है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि कबीर, जिसमें संपूर्ण सत्तामीमांसा का दर्शन उपलब्ध है, उनको केवल एक सत्तामीमांसा के रूप में साहित्य में देखा गया है। इसलिए क्या यह जरूरी नहीं कि साहित्य को कबीर पर हो रहे नूतन परिप्रेक्ष्य व शोधों को आत्मसात व जनमानस में प्रवाहित करने के लिए प्रयासवान रहना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. पुरुषोत्तम अग्रवाल, अकथ कहानी प्रेम की, कबीर की कविता और उनका समय, चौथा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2016
2. कबीर के परतर्वी संतकाव्य में दलित विमर्श, डॉ. परवीन निजाम अंसारी, सबके दावेदार, अंक–63, मई–2010
3. कहें कबीर अब सोवों नाही, डॉ. देवीप्रसाद मौर्य, सबके दावेदार, अंक–68, आजमगढ़
4. कबीर का विशेष अध्ययन, भाग–3, इग्नू मानविकी विद्यापीठ, नई दिल्ली, 2019
5. नामवर सिंह, "दूसरी परंपरा की खोज", राजकमल प्रकाशन, 2011, नई दिल्ली
6. कबीर का विशेष अध्ययन, भाग–1, कबीर का जीवन और युग, इग्नू मानविकी विद्यापीठ, नई दिल्ली, 2019
7. राहुल सांस्कृत्यायन, 'परिचयरू दोहा कोश', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 1957, पटना
8. लिडा हैस एण्ड सुखदेव सिंह (अनु.), 'दी बीजक ऑफ कबीर', ऑक्सफोर्ड, 2002, न्यूयॉर्क